Introduction

Hansa Mehta Library, The Maharaja Sayajirao University of Baroda

प्राक्कथन :

प्रेमचंद की रचनाएं नई संभावनाओं की तलाश हैं। विशेषतौर पर उनकी रचनाओं में जड़ अवधारणाओं, मृत सिद्धांतों और थोथे मताग्रहों को खण्ड-खण्ड करती हुई समाज को सच्ची दिशा की समझ है। इस समझ को पोख्ता बनाने के लिए सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जानकारी आवश्यक है। यही कारण है कि मैनें कथा-सम्राट प्रेमचंद में सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विमर्श को अपने शोधकार्य का विषय बनाया है। सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विमर्श आरम्भ करने के लिए प्रेमचंद की कला संबधी भावनाओं को समझना होगा। जैसा कि शिवरानी देवी ने लिखा है- "कला के संबंध में उनकी भावना बड़ी ऊँची थी वे अपनी कला को उस मजदूर का फावड़ा समझते थे जो मनोरंजन के लिए तो कभी नहीं, सदैव किसी न किसी जीवनगत उपलब्धि के उद्देश्य से ही उठा करता है। "वे हिन्दी के प्रथम कथा सम्राट हैं, जिन्होंनें एक विमर्शक की तरह देश की सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक यथार्थ का चित्रण कथा-साहित्य में आरम्भ किया।

प्रेमचंद साहित्य सेवा को पूरी तपस्या मानते हैं। राजनैतिक यथार्थ को कथा-साहित्य की प्राणधारा के रूप में स्थापित किया। प्रेमचंद ने साहित्य की दुनिया में समाज को बदलने की पहलकदमी की। प्रेमचंद की सर्जना का समय मुख्यतः बीसवीं शताब्दी है। भारत में बीसवीं शताब्दी में गाँधी और आम्बेडकर विचार-दर्शन के प्रभावशाली हस्तक्षेप से नवजागरण का वैचारिक पक्ष अधिक सघन हुआ। भगतसिंह के क्रांतिकारी दर्शन और आंदोलन का समय भी यही है। तत्कालीन साहित्य में इसकी अनुगूंज सहज ही सुनी जा सकती है। यह महज संयोग ही नहीं है कि प्रेमचंद ने विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रश्नों पर प्रभूत मात्रा में प्रत्यक्ष टिप्पणियां तथा लेख लिखे हैं। प्रेमचंद के साहित्य में उनका महत्त्व उनकी कहानियों-उपन्यासों से थोड़ा भी कम नहीं है। कुछ महत्त्वपूर्ण आलोचकों ने इस वैचारिक लेखन को प्रेमचंद के कथा संसार के प्रवेश द्वार के रूप में व्याख्यायित किया है। प्रेमचंद गंभीर चिंतक-विचारक और उच्चकोटि के सजग पत्रकार भी हैं।

प्रेमचंद जी अपने समय की प्रथम पंक्ति की पत्र-पत्रिकाओं से जुड़े रहे। वे जितने महत्त्वपूर्ण उर्दू के लिए हैं, उतने ही महत्त्वपूर्ण हिन्दी के लिए भी।

हिन्दी-उर्दू के बीच वे संपर्क-सेतु की तरह हैं। वे प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम सभापति चुने गये और उस मंच से दिया गया उनका ऐतिहासिक वक्तव्य आधुनिक साहित्य का आधार दस्तावेज है। बाबू बनारसीदास सक्सेना, मुन्शी दयानारायण निगम, जैनेन्द्र कुमार, इन्द्रनाथ मदान आदि को उन्होंने जो विभिन्न अवसरों पर पत्र लिखा है वह भी इस दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। इन पत्रों में भी प्रेमचंद की सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक दृष्टि के कई संकेत मौजूद है। डा. शिवकुमार मिश्र के अनुसार - "प्रगतिशील आंदोलन के उद्भव के साथ सामने आने वाला कथा-साहित्य प्रेमचंद की परंपरा और विरासत को अपने समय की वास्तविकता के संदर्भ में यथार्थ की उसी जीवंतता के साथ पेश करता है जो प्रेमचंद के कृतित्व की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता थी।"

प्रेमचंद हंस, माधुरी, विशाल-भारत इत्यादि प्रतिष्ठित पत्रिकाओं के संपादक रहे अपने मानवीय मूल्यबोध के कारण कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी और निबंधों की रचना की। इसी कारण वे कथाकार के रूप में अधिक प्रतिष्ठित हुए। उनकी पहली कहानी सन् 1910 में "बड़े घर की बेटी" जमाना में प्रकाशित हुई।

प्रेमचंद का रचना संसार एक ओर जिस तरह तत्कालीन समाज का दर्पण है, ठीक उसी तरह जीवन की असंगतियों-विसंगतियों को बदलने का अन्यतम हथियार भी है। डा. रामविलास शर्मा के अनुसार- "प्रेमचंद साहित्य-स्रष्टा तो थे ही वह दूसरों में साहित्य रचना की प्रेरणा पैदा करने वाले नए लेखकों को प्रोत्साहित करने वाले साहित्यकार भी थे। "वह भारतेन्दु, बालमुकुन्द गुप्त और महावीर प्रसाद द्विवेदी की शानदार परम्परा में उत्पन्न हुए थे और उन्होंने उस परम्परा को उत्पन्न किया था। 'माधुरी' और आगे चलकर विशेष रूप से 'हंस' के जरिए उन्होंने हिन्दी साहित्य की शक्तियों को बटोरने का भगीरथ प्रयास किया था। डाँ. सरोज प्रसाद इस विषय में कहती हैं कि -"प्रेमचंद के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह अपने समय के आदमी के द्वारा लिखा हुआ अपने समय का साहित्य है।"

प्रेमचंद हिन्दी न केवल सर्वाधिक पढ़े जाने वाले कथाकार हैं बल्कि भारतीय सामाजिक जीवन को अनेक पहलुओं से उद्घाटित अविष्कृत करने वाले लेखक भी हैं। एक अर्थ में वे हिन्दी कथा साहित्य के मान और मूल्य दोनों को तेजी से बदल रहे इस दौर में भी प्रभावित करते हैं। अपनी रीतियों को जितना उन्होंने तोड़ा है यह सामाजिक और वैयक्तिक अनुभवों ने उनकी रीतियों को जितना विछिन्न किया है, उतना किसी भी कथाकार के साथ नहीं हुआ है। प्रेमचंद जी ने गोदान में लिखा है - "जब तक किसानों को ये रियायतें अधिकार के रूप में न मिलेंगी, केवल सद्भावना के आधार पर उनकी दशा नहीं सुधर सकती, स्वेच्छा अगर स्वार्थ

छोड़ दे तो अपवाद है। मैं खुद सद्भाववश करते हुए भी स्वार्थ नहीं छोड़ सकता और चाहता हूँ कि हमारे वर्ग को शासन और नीति के बल से अपना स्वार्थ छोड़ने के लिए मजबूर किया जाए।"

प्रेमचंद जी ने अपने कथा-साहित्य में किसान के शोषण और उत्पीड़न में सामंती व्यवस्था के अभिकर्ताओं की अपेक्षा महाजन की भूमिका पर अधिक बल और पूँजीवादी शिकंजे में सामंती तंत्र के नियामकों के भी छटपटाहट की तरफ उनका ध्यान गया है। कृषक वर्ग में उभरती हुई महाजनी मानसिकता के निरूपण से सत्ता के केन्द्र परिवर्तन की सूचना मिलती है।

प्रेमचंद भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के कथाकार और पत्रकार हैं, इसलिए उनको स्वाधीनता संग्राम का "कलम का सिपाही" ठीक ही कहा गया है। उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन के लिए संघर्ष की प्रेरणा, शक्ति और संकल्प पैदा करने के उद्देश्य से ही कथा लेखन आरम्भ किया था। ऐसे में मैंने जानबूझकर इस विषय का चुनाव किया है, क्योंकि उनके वैचारिक लेखन के संदर्भ में अभी तक उच्च-स्तरीय शोधकार्य नहीं हुआ है। प्रेमचंद की स्थापित छवि से हटकर उनके व्यक्तित्व के एक अनछुए पक्ष का मूल्याकंन / पुनर्मूल्याकंन एक नयी चुनौती है। इस क्षेत्र में शोधकार्य अधिक धैर्य और संयम की माँग करता है। इसमें एक प्रकार से नयापन भी है।

मेरे शोध का विषय लेखन क्षेत्र से है और वह कथा साहित्य से संबद्ध है, इसलिए समाज को उद्घाटित करने वाली कार्य पद्धति को मैंने अपनाया है। इस शोध-ग्रंथ के माध्यम से मेरा प्रयास यही है कि समाज में नयी दिशा और नयी सोच पैदा करना और साहित्य को अपने समय के ज्वलंत सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक प्रश्नों को जोड़ना। समाज को ऐतिहासिक और सामाजिक ही नहीं बल्कि राजनीति के माध्यम से लोगों के बीच कथा-साहित्य को पहुँचाना।

प्रथम अध्याय

राजनीतिक विद्रूपताओं पर किए गये प्रहार समाज द्वारा अपेक्षित राजनीति को सामने लाने की कोशिश इस शोध-ग्रंथ के माध्यम से किया है। इसके अतिरिक्त मैंने प्रेमचंद की भाषा और शैली को रेखांकित करने का प्रयास किया है, इससे लेखक की सच्ची साहित्य लिखने की आकांक्षा उद्घाटित हो सकती है। प्रेमचंदयुगीन परिस्थितियों के बारे में पूर्णरूप से जानकारी देने का प्रयास किया है, जैसे - उस समय की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक और

समसामयिक हर पहलुओं पर समान रूप से ध्यान देना, समाज के समस्त बाह्य कार्य-कलाप राजनीति में ही उभरते है। प्रेमचंद ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था कि, "वह देश-भक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं, बल्कि उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है।" प्रेमचंद ऐसी ही सच्चाई थे। देश-भक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई नहीं, उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई थे।

प्रेमचंद किसी पार्टी के साथ नहीं थे। वह मानों किसी आने वाली पार्टी का इंतजार कर रहे थे, जो जनता में राजनीतिक चेतना फैलाए। प्रेमचंद का साहित्य बीसवीं सदी के हिन्दुस्तान का बिल्कुल सच्ची कहानी है जो इतिहास से संबंद्ध रखती है। हमारी भोली-भाली जनता की सहृदयता, सहनशीलता और वीरता उनकी रचनाओं में फूल की भाँति खिली हुई नजर आती है। अंग्रेजों का बर्बर पुलिस-राज, खूनी आतंक और उनके सहयोगियों का भोली-भाली जनता के साथ विश्वासघात उनकी रचनाओं में काले कुहरे की भाँति दिखलाई पड़ता है। इसके साथ-ही-साथ धार्मिक स्थिति का वर्णन करना भी मैंने आवश्यक समझा क्योंकि धर्म एक सुनिश्चित परंपरा के रूप में ही हमारे यहाँ कार्य करता रहा है और नवप्रभात की रश्मि कतिपय विशिष्ट कारणों से धार्मिक विश्वासों के ही प्रागंण में छिटकी।

उन्नीसवीं शतीं में भारत में और विशेषकर गुजरात, बंगाल और महाराष्ट्र में जिस वैचारिक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ था जिसका फल ब्रह्म-समाज, प्रार्थना-समाज और आर्य-समाज जैसे सुधार आंदोलनों के रूप में प्रेमचंद के ही युग में दिखाई पड़ता है। सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थतियों की परस्पर उलझी हुई शिराओं को सुलझाने का मैंने प्रयास किया है। जिनके चलते प्रेमचंद-युगीन समाज की अनेक प्रचलित प्रथाएँ टूटी और बनीं। इन परिस्थितियों का बड़ा ही गहरा संबंध रुढ़ियों से गतानुगकिता से चला आ रहा है। प्रेमचंद ने अपने लेखन की दुनिया में रुढ़ियों, अंधविश्वासों और संकीर्णताओं के ऊपर यत्र-तत्र-सर्वत्र कशाघात किया गया है। इसी के साथ-ही-साथ आर्थिक परिस्थितियों की गुत्थी को सुलझाने का भी एक छोटा सा प्रयास किया है। अंग्रेजों के शासन का इतिहास भारतवर्ष के आर्थिक शोषण की दुखद कहानी है, शोषण के संबंध में जो विद्रोह है उसने मुझे प्रेरित किया कि मैं आलोच्यकाल में बरती जाने वाली सरकारी आर्थिक नीति का भी विश्लेषण और विवेचन करूँ।

प्रेमचंद का जीवन बचपन से ही संघर्षों से भरा पड़ा हुआ है। उन्होंने अपने जीवन में कितना संघर्ष किया है उसका भी बाल्यावस्था, शैशवावस्था, युवावस्था आदि का वर्णन इस शोध के माध्यम से करने का प्रयास किया है। इसी के साथ

ही साथ मैंने उस समय की आधुनिकता का प्रचार और प्रसार की तरफ भी ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया है। इन सभी का विवेचन और विश्लेषण इस अध्याय में किया गया है।

द्वितीय-अध्याय

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के द्वितीय अध्याय में प्रेमचंद की राजनीतिक चेतना का विश्लेषण किया है, क्योंकि समाज के समस्त बाह्य कार्य- कलाप राजनीति से ही प्रतिफलित होता है। प्रेमचंद युग की राजनीति का बहुत ही गहरा संबंध 19वीं शती की उस राजनीतिक जागृति से है जिसके निर्माण में ब्रिटिश शासन, ईसाई मिशनरी, मध्यवर्गीय चेतना और भारतीय-राष्ट्रीय-कांग्रेस का बड़ा हाथ रहा है। सन् 1905 के रूस-जापान युद्ध और बंग-भंग आंदोलन से राष्ट्र में जो एक नई चेतना सुगबुगा उठी थी उसको प्रश्रय देने के लिए किन-किन स्वदेशी-विदेशी शक्तियों द्वारा कैसे-कैसे प्रयत्न किए गए तथा उस पर पानी उड़ेल देने के लिए विदेशी सत्ता ने कौन-कौन से कार्य किए-इन बातों का लेखा जोखा किंचित् विस्तार में प्रस्तुत किया गया है। पुनः प्रथम विश्वयुद्ध की कौन-कौन सी स्वदेशी परिणतियाँ हुई, गांधी जी के असहयोग-आंदोलन का क्या परिणाम हुआ, सत्ता का दमन-चक्र किस रूप में चला। राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम की धाराएँ किस-किस तरह से प्रस्फुटित हुई, प्रगतिशील आंदोलन की शुरुआत कैसे हुई और सभी आंदोलनों का क्या प्रभाव हमारे साहित्य पर पड़ा है।

राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम की धाराओं को मुख्यतः गरमदल और नरमदल में विभाजित किया गया। गरमदल के प्रमुख नेता अरविन्द घोष, विपिनचंद पाल और लाला लाजपत राय काफी समय से कांग्रेस के बाहर रहकर भी जनशक्ति का संगठन कर रहे थे। सन् 1890 में नरमदल तथा गरमदल के नेता आमने-सामने डटकर खड़े हुए थे। गरमदल का प्रभाव असंतुष्ट समाज के निम्न वर्ग पर पड़ा। देश के शिक्षित बेकार, नवयुवकों, गरीब विद्यार्थियों और मेहनताना पाने वाले भारतीय नरम दलीय कांग्रेस नेताओं की सुधारवादी प्रवृत्ति का बगावत करते थे। उन्हें सुधार नहीं स्वराज्य चाहिए था।

प्रगतिशील आंदोलनों की शुरुआत भी प्रेमचंद के ही समय में शुरु हो चुका था। प्रेमचंद मार्क्सवाद से प्रभावित थे और मार्क्सवाद का पूरा-पूरा प्रभाव इस आंदोलन पर दिखाई पड़ता है। प्रगतिशील आंदोलन का उद्देश्य था अच्छे राष्ट्र का निर्माण करना। प्रगतिशील आंदोलन प्रेमचंद के द्वारा चलाया गया था। इसके प्रथम

अध्यक्ष प्रेमचंद ही थे। जिसके माध्यम से हिन्दी के विकास और राष्ट्र का निर्माण दोनों ही अपनी पूर्णता को प्राप्त कर सके। जितने भी आंदोलन चलाए गए उनका प्रभाव साहित्य पर भी दिखाई पड़ता है, समय-समय पर राजनीति के कारण साहित्य में भी फेर-बदल किया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि आंदोलनों के कारण हमारा साहित्य भी प्रभावित हुआ है। इनका सबका विस्तृत विवेचन इस अध्याय में प्रस्तुत किया है।

तृतीय-अध्याय

शोध-प्रबंध के तृतीय अध्याय में प्रेमचंद के राजनीतिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में उनके निबंधों एवं पत्र- पत्रिकाओं का विश्लेषण किया गया है। प्रेमचंद ने अपने निबंधों में साहित्य के उद्देश्य को बखूबी के साथ बताया है। उन्होंने अपने निबंधों में साहित्य को प्रमुखता से स्थान दिया है और 'साहित्य का उद्देश्य' में उन्होंने कहा है - साहित्य अपने काल का प्रतिबिंब होता है। जो भाव और विचार लोगों के हृदयों को स्पन्दित करते हैं, वही साहित्य पर भी अपनी छाया डालते हैं। इसीलिए वे निबंधों के माध्यम से भी मनुष्य के देवत्व को जगाना चाहते हैं। जगाने की यह प्रक्रिया उपदेश देकर नहीं सम्पन्न की जा सकती क्योंकि साहित्य उपदेश का कार्य करने में अक्षम होता है। प्रेमचंद मानते हैं कि मनुष्य की कोमल भावनाओं पर चोट करके तथा भावों को प्रकृति के आदर्श से जोड़कर ही साहित्यिक रुचि पैदा करना साहित्यकार का लक्ष्य होना चाहिए। भावों का सौन्दर्य ही साहित्य का आधार होना चाहिए। लेकिन निरा भावुकता ही श्रेय नहीं है उसमें बुद्धिवाद का हस्तक्षेप आवश्यक है। प्रेमचंद इसीलिए बुद्धिवाद को भावुकता को नियंत्रित करने का साधन मानते हैं। वे मनोविज्ञान को भी महत्त्व देते हैं। उनका विश्वास है कि आधुनिक साहित्य मनोविज्ञान के बिना अपूर्ण है।

कहा जाता है कि पत्र किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का दर्पण होता है। विचारात्मक लेखन कार्य वह महत्त्वपूर्ण बिन्दु होता है जहाँ से व्यक्ति के व्यक्तित्व को मापा जाता है। किसी भी व्यक्ति को लिखे गए पत्र में आत्मीयता दिखाई पड़ती है, पत्र में व्यक्ति अपने हृदय की गुप्त बातों को अपने आत्मीय को लिखकर उस तक पहुँचा सकता है। जिन बातों को रचनात्मक लेखन में लिख पाना संभव नहीं होता था उन बातों और रहस्यों को आत्मीय को लिखे गए पत्रों में जाने अनजाने सभी बातें स्पष्ट रूप से लिख सकता है पत्र को लिखने की कोई समय-सीमा नहीं होती। क्योंकि पत्र लिखते समय साहित्य-सृजन जैसी कोई प्रतिबद्धता

सजगता भी नहीं होती, उसके सामने सिर्फ भावनाएँ होती है जो अपने मन की अभिव्यक्ति को प्रकट कर सकता है।

प्रेमचंद ने अपने कथा-साहित्य के माध्यम से दलितों की समस्या गाँधीवादी छूत-अछूत, हरिजनोद्धार, समाज में स्त्रियों की हर पहलू को ध्यान में रखकर जैसे-बाल-विवाह, नारी-शिक्षा, बेमेल विवाह, स्त्रियों की दशा और दिशा, समाज नारी और दलितों की स्थिति, सांप्रदायिकता, राष्ट्र के प्रति प्रेमचंद जी का दृष्टिकोण। इसके अतिरिक्त भी किसानों-मजदूरों की परंपरागत स्थिति, समय-समय पर गाँधी जी द्वारा किया गया अथक प्रयास मजदूरों के लिए भी बहुत अपनी आवाज को बुलंद किया है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेमचंद जी ने हर समस्याओं को प्रमुखता से अपने साहित्य में स्थान दिया है और उसके निराकरण के लिए सदैव संघर्ष भी किया है। इन सभी के समस्याओं का चित्रण और विवेचन बहुत ही मार्मिक ढ़ग से करने का प्रयास किया गया है।

चतुर्थ अध्याय

शोध-प्रबंध के चतुर्थ अध्याय में राजनीतिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचंद के नाटक और एकांकी का विश्लेषण किया गया है। प्रेमचंद का प्रतिनिधि नाटक 'संग्राम' है। इस नाटक में गाँव और सभ्य समाज का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। संग्राम में प्रेमचंद ने कई समस्याओं को उभारा है, जैसे- जमींदारों की लोलुपता, सज्जनता का बाह्य प्रदर्शन, निरंकुशता। पुलिस का भ्रष्टाचार, थानेदारों, कानिस्टेबिलों, सिपाहियों के अत्याचार, लूट-खसोट, घूस, बेगार, लात और घूँसे; किसानों की बेबसी, घोर निर्धनता, गुलामी, अन्याय, दुःख और पीड़ा; साधुओं का मायाचार, पाखण्ड, धूर्तता और आचरणहीनता; स्त्रियों में फैली हुई संकुचितता, मूढ़ता, रुढ़िवादिता; पुत्र-कामना के लिए अपने चरित्र की अवहेलना, पाखण्डी साधुओं द्वारा ठगे जाना; कामवासना की चपेट, कलुषित प्रेम का नारकीय अग्निकुण्ड, संयमशील व्यक्तियों का भी वासना चक्र में फँस जाना; धीरे-धीरे गाँवों में आती हुई जागृति, राष्ट्रीय भावना, अधिकारों की भावना, गाँधी जी का प्रभाव, प्राचीन आदर्शो की रक्षा इत्यादि। संग्राम में जमींदार-किसान समस्या को उजागर किया गया है।

प्रेमचंद का 'कर्बला' नाटक (1924) ऐतिहासिक धार्मिक नाटक है। इस नाटक में मुसलमानों की संस्कृति एवं धार्मिक युद्धों को नाटक के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। हिन्दुओं के धर्म में जैसे रामायण और महाभारत की

कथाएँ प्रसिद्ध है, उसी प्रकार से मुसलमानों के जातीय इतिहास में 'कर्बला' को भी धार्मिक युद्ध में वही स्थान प्राप्त है।

'प्रेम की वेदी' एकांकी में प्रेमचंद ने विवाह समस्या का विवेचन किया है। ईसाई तथा हिन्दू धर्मो का तुलनात्मक अध्ययन, नारी की दयनीय स्थिति, पुरुषों की भ्रमर मनोवृत्ति, प्राचीन तथा नवीन विवाहों का अंतर, दाम्पत्य प्रेम की विषमताएँ, विपरीत धर्मो के व्यक्तियों के प्रेम तथा उसके दुष्परिणाम, विवाह और धर्म आदि अनेक प्रश्नों की उद्भावना इस नाटक में की गई है। इन सभी समस्याओं को अध्ययन इस अध्याय में किया गया है।

पंचम अध्याय

शोध-प्रबंध के पंचम अध्याय में समकालीन संदर्भो और प्रेमचंद के विषय पर विस्तृत अध्ययन हुआ है। इस अध्याय में बाजारवाद, पूँजीवाद, भूमण्डलीकरण, निजीकरण और उदारीकरण, उपभोक्तावाद, उत्तर उपनिवेश की राजनीति। इन सब तत्वों का उजागर किया गया है। व्यापार, बाजार और बाजारवाद के अन्तःसंबंधों और उनके साथ समाजवाद के संबंधों को भी परखते रहने की जरूरत है। यह जरूर ध्यान देने की बात है कि किसी भी संस्था का प्रारम्भ मनुष्य की भौतिक जरूरत के दबाव से ही होता है। इस बदलते हुए स्वरूप के साथ संस्थाओं का स्वरूप भी बदलता है। जिस संस्था में बदलाव की जितनी अधिक आंतरिक शक्ति होती है, वह संस्था उतने ही अधिक समय तक मनुष्य की सोच प्रभावी ढ़ग से करती रहती है। जिस प्रकार किसी भी संस्था में बदलाव की आंतरिक शक्ति होती है, इसी प्रकार उसमें एक प्रकार की बदलाव विरोधी जड़ता भी होती है।

बंबई और गुजरात में पूँजीवाद के विकास एवं बंगाल में इसके लगभग अभाव के बीच स्पष्ट लक्षित होने वाली विषमता का कारण यह बताया जाता रहा है कि बंगाली भद्रलोक में व्यापार और उद्योग के प्रति सहज अरुचि थी और यह भी कि स्थाई बंदोबस्त के कारण बंगाल में देशी पूँजी का आकर्षण भूमि की ओर ही अधिक रहता था। किन्तु 1840 के दशक तक उच्च वर्ग के बंगाली पर्याप्ति संख्या में व्यापार

में जुड़ गए थे, जबकि पूरी उन्नीसवीं सदी के दौरान बंगाली पत्र-पत्रिकाएँ बारंबार अपने पाठकों को स्वतंत्र उद्यम के लाभ बताती रही थीं।

किसी भी वस्तु, व्यक्ति या स्थान को अपना बना लेना ही निजीकरण कहलाता है। अपना बना लेने का पाठ हमें सदियों से हमारे पूर्वज पढ़ाते आ रहे हैं – 'आत्मवत् सर्वभूतेषु'। परन्तु हमारे यहाँ सांस्कृतिक अध्याय में हर किसी को अपने समान समझने का भाव हमेशा से ही अंतर्निहित रहा है। आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया की शुरूआत 1991 में उस समय हुई जब राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था अस्थिर, असंतुलित तथा जड़ हो गई थी तथा इसकी साख रसातल में धसती जा रही थी। उदारीकरण की यह प्रक्रिया सातवें-आठवें दशक में निर्मित लाइसेंस, परमिट राज से बिल्कुल अलग है, इसका उद्देश्य है, भारतीय अर्थव्यवस्था पर लगे नियंत्रण को कम करना तथा सरकार को आर्थिक दायित्वों से मुक्त करना, ताकि वह सामाजिक क्षेत्र के लिए अतिरिक्त संसाधन जुटा सके, प्रभावशाली लक्ष्य को निर्धारित कर सके तथा उत्पादन क्षमता में वृद्धि भी कर सके।

भूमण्डलीकरण आज के दौर में भी सभी मनुष्यों को एक नया आयाम देने वाला है, भूमण्डलीकरण ने सबसे ज्यादा हताहत पुरुषवादी सामाजिक संरचना के भीतर काफी उथल-पुथल मचा दी है। भूमण्डलीकरण की अवधारणा में ही ऐसा द्वन्द्व है स्त्री का व्यापक विस्तार भी इस संरचना के भीतर द्वन्द्वात्मक रूप में हुआ है। इन सभी तत्वों का निरूपण इस अध्याय में किया गया है।

षष्ठ अध्याय

षष्ठ अध्याय उपसंहार के रूप में किया गया है। जहाँ सभी अध्यायों का सारांश प्रस्तुत किया गया है प्रेमचंद की साहित्य साधना इस बात का साक्ष्य है कि उन्होंने जिन्दगी की चुनौतियों को साहस के साथ स्वीकारा और समय के एक-एक तेवर को पंचानते हुए अपनी रचनाओं में उन्हें इस तरह से प्रस्तुत किया कि वे समय और जिन्दगी के प्रमाणिक दस्तावेजों के रूप में अपनी पहचान बना सकीं। हम तक तो यह नहीं कहेंगे कि प्रेमचंद ने अपने साहित्य की इमारत शून्य से खड़ी की किन्तु इतना सब लोग जानते है कि प्रेमचंद के परिवेश में ऐसा कुछ नहीं था जो

उन्हें लेखक बनने की प्रेरणा देता। घर, परिवार और परिवार के बाहर की स्थितियाँ ऐसी थीं कि निर्वाह लायक नौकरी पाकर गृहस्थी की गाड़ी को आगे बढ़ा लें जाने को ही औसत आदमी जिंदगी की सार्थकता मान सकता था। किंतु ऐसे परिवेश में भी प्रेमचंद ने एक सपना देखा, और एक लेखक के रूप में ही अपनी पहचान कायम की। इसे परिवेश पर रचनाकार की आस्था की विजय न कहा जाए तो और क्या कहा जाए।

अंत में मैं इतना जरूर कहना चाहूँगी कि राजनैतिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचंद का कथेत्तर-साहित्य पर शोध करने का स्वप्न मेरा अधूरा ही रह जाता यदि मुझे गुरूजनों की प्रेरणा एवं सहयोग न प्राप्त होता। कबीरदासजी ने ठीक ही कहा है-

गुरु बिन ज्ञान न ऊपजे, गुरु बिन मिले न मोक्ष।
गुरु बिन लखे न सत्य को, गुरु बिन मिटे न दोष।।

यह तो पूर्णतः सत्य है कि गुरु की महिमा अपरम्पार है। बिना गुरु के ज्ञान मिलना संभव ही नहीं बल्कि दुःसाध्य है। गुरु ही एक सच्चा मार्गदर्शक होता है जो हमें लक्ष्य को पूर्ण करने में हमारी सहायता करता है। पथ पर आने वाली अनेक बाधाओं से लड़ने की हमें क्षमता प्रदान करता है, और ज्ञान के दीपक को अपनी शक्ति के माध्यम से प्रदीप्त करता है। प्रस्तुत शोध-प्रबंध को पूर्ण करने में मुझे परम श्रद्धेय डॉ. शैलजा भारद्वाज जी की ममता और स्नेह की छाँव में रहकर ही उनका दिशा-निर्देशन तथा प्रोत्साहन मिलता रहा। कई बार इस शोध के दौरान ही बहुत सारी मुश्किलें आयी, परन्तु उन मुश्किलों से दूर करने के लिए हमेशा मुझे अपनी ममता के सानिध्य में रखकर प्रोत्साहित करती रहीं। यह अप्रतिम कार्य आपकी ममता और स्नेह के कारण ही सफल हो पाया। इतना ही नहीं बल्कि आपके मार्गदर्शन की आवश्यकता जीवन के हर कदम-कदम पर पड़ेगी और आपका हर निर्देशन मेरे जीवन का पथप्रदर्शक बने। अतः आप के गुरुचरणों में मेरा कोटि-कोटि वंदन स्वीकार हो।

हिन्दी-विभाग की शिक्षिका डॉ. शन्नो पाण्डेय जी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ कि उन्होंने मेरा मनोबल हमेशा बनाये रखा। समय-समय पर इन्होंने मुझे बहुत सहयोग किया है, अगर उनका ममतामयी स्नेह मुझे न प्राप्त होता तो भी संभवतः मेरा यह प्रयास अधूरा ही रह जाता।

मेरे दिवंगत हो चुके पूजनीय माता स्वर्गीय श्रीमती दुर्गावती मिश्रा और पिता स्वर्गीय श्री त्रिलोकी नाथ मिश्र का स्वप्न में आ-आकर अपने स्नेह एवं आशीर्वाद से हमें हमेशा आगे बढ़ने की प्रेरणा देते रहे। दुनिया में न होते हुए भी मुझे उनका सानिध्य सदैव प्राप्त होता रहा। पिताजी की इच्छाओं को पूर्ण कर रही हूँ, जहाँ कही भी होंगे उनकों प्रसन्नता जरूर होगी। पिताजी हमेशा उचित सलाह देकर आगे बढ़ने का मार्ग बताते रहते थे। अतः पूजनीय स्नेहिल माता-पिता के चरणों में मैं सदैव नतमस्तक रहूँगी।

मेरे माँ-पिता समान बड़े-भाई व भाभी का स्नेह व प्यार मुझे सदैव प्राप्त होता रहा। मेरी बड़ी बहन का भी असीम प्यार और प्रोत्साहन मिलता रहा। अपने अनुज को कैसे भूल सकती हूँ-उसने मुझे बहुत प्रोत्साहित किया है। परिवार के और सभी सदस्यों का सहयोग प्राप्त होता रहा। तभी यह शोध-कार्य पूर्ण हो पाया है। मेरे मित्रों का भी समय-समय पर सदैव सहयोग प्राप्त होता रहा है। यह शोधकार्य तब भी अधूरा ही रह जाता अगर मेरी चाची श्रीमती सुमित्रा मिश्रा एवं चाचा श्री मंगला प्रसाद मिश्र जी ने विषम परिस्थितियों में मेरा सहयोग न किया होता। मैं उनकी सदा ही आभारी रहूँगी।

मैं अपने बेटे अक्षत त्रिपाठी को भला कैसे भूल सकती हूँ सवा महीने के बाद से ही उसने मेरा हर क्षण बहुत सहयोग दिया है, सबसे अधिक से अधिक सहयोग मेरे बेटे ने न दिया होता तो यह शोधकार्य पूर्ण कर पाना मेरे लिए नामुमकिन था। हृदय से मैं हमेशा अपने बेटे की सदैव आभारी रहूँगी और आशा करती हूँ कि मेरा बेटा इसी तरह हमेशा मेरे कार्यो में मेरा सहयोग अवश्य करेगा।

मैं श्रीमती हंसा लाइब्रेरी के सभी कार्यरत सदस्यों का भी हृदय से आभार व्यक्त करना चाहूँगी जिन्होंने मेरे विषयानुकूल पुस्तकें, विविध सामग्री उपलब्ध कराकर अपना सहयोग प्रदान किया।

विद्वानों से मेरा नम्र निवेदन है कि शोध की किसी भी दिशा में किए गए मेरे इस छोटे से अथक प्रयास को स्वीकृत करें तथा अज्ञानतावश हुई किसी भी प्रकार की त्रुटियों को उदार हृदय से क्षमा प्रदान करें।

भवदीय

–मधु बी. मिश्रा

पार्टियों दिनों की [illegible] लिखी पड़ता था, पर इतना-यह [illegible]
तो आये। लेखकों ही का यह काम होता कि वह उस समय
की सच्चा चित्र खींच सकें।

इस समय [illegible] ने (रामदेव और मैं ने) पिछली [illegible]
अच्छे लोगों के अनुवाद की एक योजना बनाई थी। क्यों
न जिस में वह योजना भी शामिल कर ली जाय।

[illegible] में भी Soviet writers Union है। और
[illegible] में है या नहीं मुझे मालूम नहीं। लेकिन मुझे लेखकों
को केवल उसकी मज़ा समझने में [illegible] आनंद नहीं मिलता।
[illegible] की तरह [illegible] उपदेशक की बातों का मज़ा, और [illegible]
समझने में बड़ा होता है। लेकिन
लेखक की [illegible] का मज़ा समझने में
केवल मज़ा नहीं बल्कि और कुछ है — यह विचारों का
आविष्कारक और उत्तेजक और उत्पादक भी है। जिस तरह
आप उपदेशकों और प्रचारकों को लेखक के रूप में
नहीं ला सकते उसी तरह आप लेखकों को भी
[illegible] में नहीं बांध सकते। हां फिर यह कह सकता है
कि [illegible] लेखकों और प्रकाशकों के बीच में [illegible] और [illegible]
[illegible] के व्यवहार को बंद करने का प्रयोग करें, लेखकों में
जैसे आपकी, जैसे आपने [illegible], और कला की उन्नति की व्यवस्था
को। मैं इस विषय में मिलने पर आप से बातें करूंगा।
आशा है आप प्रसन्न होंगे। मैं तो ठीक जाता हूं।

[illegible]

S A MEHTA LIBRARY University